© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section: Engineering and Technology

जैन पुराणों में राजा के अधिकार एवं कर्त्तव्य

निलेश मिश्र
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जैन पुराणों में राजा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजा अपने राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह राजतंत्र, सेना, प्रशासन तथा न्यायपालिका का प्रधान होता था[1]। उसके अधिकार असीमित थे। वह अपने देश के उच्च अधिकरियों, राजदूतों, मन्त्रियों एवं राज्यपालों की नियुक्ति करता था। महापुराण के अनुसार राज्य से अपेक्षा की जाती थी कि वह युद्ध में मृत व्यक्ति के स्थान पर उसके पुत्र या भाई को उसके पद पर नियुक्त करेगा[2]। जैन पुराणों में राजा की दिनचर्या के विषय में उल्लेख आया है कि राजा शय्या से उठकर देव एवं गुरुओं की पूजा–अर्चना करता था। इसके उपरान्त वह रानी के साथ सभागृह में सिंहासन पर विराजमान होता था[3]। महापुराण में राजा की वृत्ति के विषय में उल्लिखित है कि निष्पक्ष सबको एक समान देखना, कुलमर्यादा की रक्षा करना, बुद्धि द्वारा अपनी रक्षा करना तथा प्रजा का पालन करना आदि राजा की वृत्तियाँ थी[4]। महापुराण में वर्णित है कि वह अपने राज्य में धर्म, अर्थ एवं काम के सम्वर्धनार्थ विविध प्रकार के कार्य करता था[5]। पद्मपुराण में राजा अपनी प्रजा से भेंट करने का समय देता था[6]। यही विचार हमें जैनेतर ग्रन्थ महाभारत में भी उपलब्ध होते है[7]।

महापुराण में राजा को सावधान करते हुए उल्लिखित है कि राजा को अन्य मतावलम्बियों से आशीर्वाद, शेषाक्षतादि ग्रहण नहीं करना चाहिए[8]। इससे जैनियों की संकीर्ण विचारधारा का आभास मिलता है। सम्भवतः इसी संकीर्णता के कारण राजा इसका पालन नहीं करते थे। महापुराण में वर्णित है कि यदि उसका दाहिना हाथ भी दुष्ट (दोषपूर्ण) हो जाए, तो राजा को उसे भी काट डालना चाहिए[9]। इसी प्रकार महापुराण में उल्लिखित है कि दुष्टों का निग्रह तथा सज्जनों का संरक्षण करना राजा का धर्म है[10]। पद्मपुराण में वर्णित है कि राजा भयभीत, ब्राह्मण, श्रमण (मुनि), निहत्थे व्यक्ति, स्त्री, बालक, पशु तथा दूत पर प्रहार नहीं करते हैं[11]। इसी पुराण में राजा को गोत्र परम्परानुसार तपस्वियों की सेवा का दृष्टान्त भी उपलब्ध है[12]।

जैन पुराणों के अनुसार राजा का यह कर्तव्य है कि वह वर्णाश्रम धर्म को वर्ण–संकरता से सुरक्षित रखे[13]। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में उस समय संक्रमण–काल चल रहा था। जैनाचार्यों ने भी वर्ण–संकरता को रोकने का प्रयास किया है। जैनाचार्य जिनसेन का कथन है कि राजा को न्यायपूर्वक प्रजा का पालन चाहिए। धर्मशास्त्र के अनुसार अर्थाजन में अपनी प्रखर बुद्धि का उसे उपयोग करना चाहिए। अपने बाहुबल से अपने इष्टजनों एवं प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। जो राजा इन छः अन्तरंग शत्रुओं– काम, क्रोध,

मद, लोभ, मोह एवं मत्सर्य–पर विजय कर अपनी वृत्ति का पालन करता हुआ स्वराज्य में स्थिर रहता है वह इहलोक एवं परलोक में समृद्धि को प्राप्त करता है[14]। पद्मपुराण में उल्लिखित है कि राजा अपनी प्रजा का हित पिता सदृश्य करता है[15]।

जैनेतर आचार्यों ने राजा का प्रमुख कर्त्तव्य प्रजारक्षा माना है[16], किन्तु अग्नि पुराण में नौ, नारद स्मृति में पाँच तथा मनुस्मृति में आठ प्रकार के राजा के कर्त्तव्यों का उल्लेख उपलब्ध है[17]। डॉ. बट कृष्ण घोष का मत है कि भारतीय राजनीतिशास्त्र में प्रजा का प्रभुत्व उसके व्यक्तिगत रूप में न मानकर शासकीय नियमों के संरक्षक के रूप में स्वीकार किया गया है[18]।

इस प्रकरण के प्रारम्भ में ऋग्वेद के आधार पर राजा के कर्त्तव्यों का संक्षिप्त संकेत किया जा चुका है। पौराणिक–साहित्य एवं महाभारत–रामायणादि ग्रन्थों में राजा के विधेय कार्यों का विशद वर्णन मिलता है। राजा का पद केवल ऐश्वर्य–सुख–भोग के लिये नहीं था बल्कि गुरुतर कार्य–भार के कारण अत्यन्त दुःखपूर्ण भी था। पद्मपुराण के अनुसार सन्धि–विग्रहादि की सतत चिन्ता के कारण तथा पुत्रादि से भी भीति के कारण राज्य से किसी प्रकार का सुख नहीं है–

राज्येऽपि हि कुतः सौख्यं सन्धिविग्रहचिन्तया।
पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम्[19]।।

इस कथन से राजा के दायित्व की गुरुता का ही बोध कराया गया है। महाकवि कालिदास ने भी दुष्यन्त के राज–कार्य का वर्णन करते हुए इस तथ्य को अधोलिखित पद्य में व्यक्त किया है–

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा से वृत्तिरेवं विधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्[20]।।

राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा–पालन और लोक–रंजन रहा है। राजा ययाति ने अपने पुत्र को राज्याधिरोहण के समय प्रजा को प्रतिदिन वांछित वस्तु अर्पण करने, पुत्र के समान उनका पोषण करने तथा सौख्य–वर्द्धन हेतु सतत प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया था[21]। चारों वर्णों को स्वकर्म में प्रवृत्तकर धर्माचरण की व्यवस्था करना भी राजा का आवश्यक कर्त्तव्य माना गया है। इस कर्त्तव्य का परित्याग कर दुराचरण में प्रजा को प्रवृत्त करने वाले राजा वेन को उसके कर्त्तव्य की शिक्षा देते हुए ऋषियों का प्रतिपादन है कि राजा पृथिवी का स्वामी होता है और प्रजा पालन उसका आवश्यक कर्तव्य होता है। यही नहीं अपितु धर्मपालन की दृष्टि से तो राजा को साक्षात धर्म–मूर्ति कहा गया है। अतः धर्म की रक्षा राजा द्वारा अवश्यमेव की जानी चाहिए[22]। राज्याधिरोहण के समय राजा उक्त कर्त्तव्यों के निर्वाह की प्रतिज्ञा करता था। बाद में तद्विपरीत

आचरण करने पर प्रजा उसे पूर्वकृत–प्रतिज्ञा का स्मरण करा कर सतर्क करती थी[23]। धार्मिक क्रिया–कलापों का प्रजा में प्रचार–प्रसार तथा उसका आचरण कराना भी राजा के कर्त्तव्य में समाहित था। राजा ययाति ने अपनी समस्त प्रजा को बनाकर हरिनामामृत पान करने का आदेश लागू किया था। इसका उल्लंघन करने वाले को दण्ड देने का भी प्रावधान था[24]। इस प्रकार के शासनादेश के द्वारा ही ययाति ने इस भूतल को स्वर्ग बना दिया । स्वर्गलोक की सारी विभूति और सुख–सुविधा प्रजा को यही प्राप्त थी। इसलिए ययाति ने इन्द्र के स्वर्ग–निवास–विषयक प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उसी समय उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग बनाउँगा, स्वयं स्वर्ग नहीं जाऊँगा–'नाहं स्वर्गं गमिष्यामि स्वर्गमत्र करोम्यहम्' (पद्म. भूमि 72.27)। राजा ययाति को अपनी इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने में सफलता भी प्राप्त हुई थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय राज्य–व्यवस्था में धर्म का प्रभुत्व था और राजा धर्म–पालनको सर्वोपरि महत्त्व देता था क्योंकि धर्म ही प्रजा को धारण करने वाला कहा गया है[25]।

❖❖❖

संदर्भ

1. गुलाब चन्द्र चौधरी–पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर 1963, पृ. 333, बट कृष्ण घोष, हिन्दू राजनीति में राष्ट्र की उत्पत्ति, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, टीकमगढ़, 1946, पृ. 272, अर्थशास्त्र 8.1.।
2. तथा नृपोऽपि सङ्ग्रामे भृत्यमुख्येव्यसौ सति। तत्पदे पुत्रमेवास्य भ्रातरं वा नियोजयेत् ।। (महा. 42.151)
3. महा. 41.121,62.100,64.18।
4. समं समज्जसत्वेन कुलमत्यात्मपालनम् । प्रजानुपालनं चेति प्रोक्ता वृत्तिर्महीक्षिताम् ।। (महा. 38.281)
5. महा. 41.103।
6. पद्म. 11.46।
7. महाभारत शान्तिपर्व 60.19, महाभारत सभापर्व 5.116।
8. महा. 42.20–29।
9. महा. 67.111।
10. वही 67.109।
11. नरेश्वरा ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजं प्रहरन्ति जातु।
    न ब्राह्मण न श्रमण न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ।। (पद्म 66.90)
12. पद्म 85.52।
13. हरिवंश 14.7, महा. 41.82,50.3।

14. महा. 38.270–280।
15. पद्म 21.54।
16. विष्णुधर्मसूत्र 3.2–3, महाभारत, शान्तिपर्व 68.1–4, मनु. 7.144, वशिष्ठ 19.7–8, रघुवंश 14.67।
17. बी.बी. मिश्र, पॉलटी इन द अग्निपुराण, कलकत्ता, 1965, पृ.32।
18. बटकृष्ण घोष, वही, पृ.272।
19. पद्म., भूमि, 66.159।
20. अभिज्ञान शाकुन्तल, 516, इस प्रकार के वर्णन के लिए द्रष्टव्य 5.4–5,7।
21. प्रजानां वांछिनं समर्पयस्व दिने दिने। प्रजासौख्यं प्रकर्तव्यं प्रजां पोषय पुत्रक। (पद्म., भूमि, 82.23)
22. राजा हि पृथिवीनाथः प्रजां पालयते सदा। धर्ममूर्तिः स राजेन्द्रस्तस्माद्धर्मान्हि रक्षयेत् । (पद्म., भूमि, 27. 31)
23. वही, भूमि, 27.33।
24. वही, भूमि, 37.7–10।
25. धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मोधारयते प्रजाः। (महाभारत, कर्णपर्व, 69.58)